**International Journal of Humanities and Social Science Research**
**ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22**
**Received: 08-07-2020; Accepted: 23-07-2020; Published: 09-08-2020**
**www.socialsciencejournal.in**
**Volume 6; Issue 4; 2020; Page No. 84-86**

# भारत–अमेरिका सम्बन्धः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में

**नमो नारायण मीना**
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत

**सारांश**
भारत–अमेरिका सम्बन्धों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में गांधी के अहिंसात्मक सिद्धान्त की छवि देखी जा सकती है। 1492 में कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज ने ऐतिहासिक संबंधों हेतु मार्ग प्रशस्त किया। शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति, बन्धुत्व, भाइचारे की भावना से विश्व को अवगत कराया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अमेरिका की जनता की गहरी सहानुभूति थी इस कड़ी में 1913 में गदर पार्टी की स्थापना अमेरिका में ही हुयी थी। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् सम्बन्धों में मधुरता लाने हेतु दोनों ओर से कोशिश की गई परन्तु मतभेद ही उभरकर सामने आये। सी.एफ. एन्ड्रूज एवं श्रीमती सरोजनी नायडू ने अमेरिकी जनता की सहानुभूति प्राप्त करने हेतु अमेरिका का दौरा भी किया। जिससे वहाँ के जनमानस में भारत के प्रति रूचि बढ़ी। लेख में यह स्पष्ट होता है कि भारत–अमेरिका सम्बन्धों का ढाँचा खड़ा करने में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण योगदान है।

**मूल शब्दः** ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, ब्रूसेल्स सम्मेलन, शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन, गदर पार्टी, स्वतंत्रता आन्दोलन, द्वितीय विश्व युद्ध, साम्राज्यवाद, अप्रवासी भारतीय

## प्रस्तावना

भारत–अमेरिका सम्बन्धों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यन्त ही विशिष्ट रही है। विश्व के दो बड़े प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों के सम्बन्धों की आधारशिला महात्मा गाँधी के अहिंसा नामक सिद्धान्त पर आधारित है। अहिंसा नामक सिद्धान्त को भारत के भगवान गौतम बुद्ध ने प्रतिपादित किया था। भारत की गुटनिरपेक्ष पर–राष्ट्र नीति भी लगभग इसी सिद्धान्त पर आधारित है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को विभिन्न राष्ट्रों से आये हुए अप्रवासीय लोगो की भूमि कही जाती है। भारतीय मूल के आप्रवासी संयुक्त राष्ट्र में उनकी संख्या तो अधिक नहीं है अपितु भारतीयों ने अमेरिकी जन–जीवन में अपना प्रमुख स्थान बना रखा है। भारतीयों ने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं कठिन परिश्रम के कारण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में एशियाई समुदाय के लोगों में अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं।[1]

अप्रवासीय भारतीयों ने अमेरिका में भारत–अमेरिकी समुदाय के रूप में अपना विशेष स्थान बना लिया है। मानव जाति के अपने मूल स्थान को छोड़ने के कई कारण होते हैं, जैसे पर्यावरणीय गिरावट, राजनीतिक एवं धार्मिक उथल–पुथल, आर्थिक कठिनाई एवं अन्वेषण आदि। आज का सहारा रेगिस्तान किसी समय में पूर्णरूपेण आबाद एवं प्राकृतिक रूप से हरा–भरा था। अमेरिका में सबसे पहले जलवायु परिवर्तन के कारण भारतीय लोगों ने ही आकर बसना शुरू किया। समुद्र का स्तर गिरने के कारण बेरिंग जलडमरूमध्य का पानी जमीन के रूप में परिवर्तित हो गया जिसकी वजह से एशियाई लोगों को उत्तरी अमेरिका पहुंचने में कोई बाधा नहीं हुई। सन् 1492 ई0 में कोलम्बस ने अमेरिका की पुर्नखोज की।[2]

सन् 1620 ई0 में एम0ए0 प्लेमाउथ नामक तीर्थयात्री ने इंग्लैण्ड में हो रहे धार्मिक उथल–पुथल के कारण अमेरिका में आकर रहने लगे। बीसवीं शताब्दी में बहुत से अत्याचारी राष्ट्राध्यक्षों के कारण वहाँ के मूल निवासी दूसरे देशों में जाकर रहने एवं बसने लगे। आर्थिक कठिनाई के कारण बहुत से लोग अपने सगे सम्बन्धियों को छोड़कर दूसरे देश चले जाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में लाखों आयरिस आदमी एवं औरतें अकाल पड़ने की वजह से अपना देश छोड़कर अमेरिका में आकर रहने लगे। सन् 1800 से 1860 ई0 के बीच में 20 लाख आयरिश एवं 15 लाख जर्मन अमेरिका में आकर रहने लगे। 19वीं सदी के अन्तिम दशकों में लगभग 1 करोड़ पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रो के निवासी जैसे अंग्रेज, डच, स्वेड्स एवं नार्वेजियन अमेरिका में प्रवास करने लगे। सन् 1890 से 1914 ई0 के बीच लगभग 1 करोड़ 60 लाख अप्रवासी आकर अमेरिका में रहने लगे। इनमें से 80 प्रतिशत पूर्वी एवं दक्षिणी यूरोप के निवासी थे जैसे सिसिलियन, यूनानी, पोल, चेक्स, इटैलियन एवं रूसी यहूदी।[3]

इस प्रकार विदेशी लोगों का अमेरिका में आकर बसना सदियों बदस्तूर जारी रहा। इसी श्रृंखला में भारतीयों ने भी अमेरिका में आकर बसना प्रारम्भ किया। भारतीय मूल के निवासियों को अमेरिका में भारतीय अमरीकी नाम से जाना जाता है। पिछले 30 वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय अमरीकी समुदाय की संख्या लगभग 10 लाख हो गयी हैं।

भारत एवं अमरीका के वाणिज्यिक सम्बन्धों का प्रारम्भ सन् 1790 ई0 में व्यापारिक नौ जहाजी श्रमिक के रूप में प्रथम आप्रवासी भारतीय का प्रवेश संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में हुआ। इसी श्रृंखला में संयुक्त राष्ट्र कैलीफोनिया एवं वाशिंगटन राज्यो में भी पश्चिमी सीमावर्ती सामुद्रिक तट से भारतीयों का आवागमन प्रारम्भ हुआ। 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे भारतीय अप्रवासी मुख्यतः कृषक श्रमिक थे। इनमें से अधिकतम सिक्ख जो हिन्दू के रूप में विख्यात हुए।

पिछले दो शताब्दियों में भारत अमेरिका के सांस्कृतिक सम्बन्धों में प्रगति हुयी। जिसके कारण व्यापारियों, मिशनरी, बुद्धजीवियों तथा छात्रों का आवागमन प्रारम्भ हुआ। सन् 1893 ई0 में स्वामी विवेकानन्द अमरीका गये जहाँ शिकागो में उन्होने सर्वधर्म सम्मेलन में भाषण दिया। उनके इस धार्मिक व्याख्यान से प्रभावित होकर वहाँ पर लोगों ने वेदान्त सोसाइटी का गठन किया। भारतीय भाषा एवं धर्म को जानने के लिए बहुत से केन्द्र खुल गए। शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन के पूर्व उनकी भेंट हारवर्ल्ड यूनीवर्सिटी के विख्यात प्रोफेसर जॉन हेनरी राइट से हुई। प्रोफेसर राइट ने स्वामी जी से शिकांगों सर्वधर्म सम्मेलन के सभापति के नाम एक परिचय पत्र दिया। इस पत्र में डा0 राइट ने लिखा था "यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो अमेरिका के सारे

विद्वान प्रोफेसरों की इकट्ठी विद्वता से कहीं अधिक विद्वान हैं"। स्वामी विवेकानन्द का भाषण भारत की सार्वदेशिकता एवं विख्यात हृदयता से ओत–प्रोत था जिसने वहाँ के प्रत्येक श्रोता को मुग्ध कर दिया था।[4]

## भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एवं भारत–अमेरिका संबंध

संयुक्त राष्ट्र में भारतीय छात्रों ने पंजाबी नेतृत्व का अनुसरण किया। अमेरिका में भारतीय स्वतंत्रता की राजनीतिक चर्चा एवं गठजोड़ अप्रवासी भारतीयों में प्रारम्भ हो गया। भारतीय स्वतंत्रता की इसी कड़ी में लाला हरदयाल ने सन 1913 में गदर पार्टी (क्रान्तिकारी) की स्थापना सन्–फ्रांसिसको शहर में की। गदर पार्टी के कार्यकर्ताओं ने गदर नामक साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। इस समाचार पत्र के माध्यम से गदर पार्टी के कार्यकर्ताओं ने भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने के लिए अमेरिका में रह रहे अन्य आप्रवासी भारतीयों को प्रेरित किया। प्रथम विश्व युद्ध सन् 1914 में प्रारम्भ हो जाने के बाद गदर पार्टी के बहुत से राजनीतिक कार्यकर्ता अमेरिका से अपने देश भारत आ गये जिससे इस आन्दोलन को भारत में बढ़ाया जाए। ब्रितानी उपनिवेश के अधिकारियों ने अमेरिका को सूचित किया कि गदर पार्टी के कार्यकर्ता भारत के अन्दर जर्मन लोगों से मिल कर भारत के किसानों को ब्रितानी शासन के विरुद्ध भड़का रहे है। सन् 1917 में अमेरिका का प्रथम विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर लड़ने का फैसला हुआ।[5] अंग्रेजों के दबाव में अमरीकी सरकार ने गदर आन्दोलन को समाप्त करने का निर्णय लिया। इसी क्रम में गदर पार्टी के कार्यकर्ताओं के विरुद्ध ब्रितानी राजतंत्र के खिलाफ षडयंत्र रचने का मुकदमा कायम किया गया। इस प्रकार गदर पार्टी एवं स्वतंत्रता आन्दोलन अमेरिका में समाप्त हो गया।

अप्रवासी अधिनियम सन् 1917 के लागू होने से एशियाई भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं पर अत्यधिक कुठाराघात हुआ। परिणामस्वरूप सभी एशियाई लोगो का प्रवेश संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में वर्जित कर दिया गया। इस समय नागरिकता का देशीकरण पूर्णरूपेण गोरे लोगों के लिए आरक्षित था। इस प्रकार भगत सिंह थिंड जैसे लोग जो कि उच्च जातीय हिन्दू काकेसियन थे, को देशीकरण की मान्यता मिली। अगले कुछ वर्षों में लगभग 45 देशी कृत भारतीयों की अमरीकी नागरिकता समाप्त कर दी गयी। सन् 1913 में बने विदेशी कानून जो कि 1920–21 में संशोधित किया गया, इस कानून के क्षेत्राधिकार में सभी भारतीयों को लिया गया। इस कानून के अन्तर्गत किसी भी विदेशी नागरिक को अमेरिका में भू–स्वामी बनने का अधिकार नहीं था। इन परिस्थितियों में नये अप्रवासी भारतीयो के लिए, जो निरक्षर एवं जिन्हें अंग्रेजी भाषा का ज्ञान नहीं था, अमेरिका में जीवन–निर्वाह करना कठिन होने लगा। 1920 के आरम्भिक दशक में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में आप्रवासी भारतीयों की संख्या लगभग 5000 थी।

सन् 1917 में अमेरिका में निवास करने वाले कतिपय भारतीयों ने एक इण्डियन होम रूल लीग की स्थापना की। 1927 में कुछ भारतीयों ने इण्डिया लीग नामक एक दूसरी संस्था की संयुक्त राज्य अमरीका मे स्थापित की थी। सन् 1943 में भारतीय स्वाधीनता राष्ट्रीय समिति की स्थापना वाशिंगटन में हुई थी। सन् 1929 में सी0एफ0 एन्ड्रूज तथा श्रीमती सरोजनी नायडू ने भारतीय समस्या के प्रति अमरीकी जनता से सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अमरीका का दौरा भी किया। ऐसा कहा जाता है कि उनकी यात्रा के परिणामस्वरूप भारतीय मामलों में अमरीकी जनता की अभिरूचि बढ़ी। भारत अमरीका को अब तक लोकतंत्र और राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के समर्थक राष्ट्र के रूप में देखता था। किन्तु 1927 के ब्रुसेल्स सम्मेलन में भारत का भ्रम टूट गया। लैटिन अमरीकी देशों से आये प्रतिनिधियों ने जवाहर लाल नेहरू को बतलाया कि लैटिन अमेरिका में संयुक्त राज्य अमरीका साम्राज्यवादी नीति का ही पोषक है। भारत लौटने के बाद राष्ट्रीय कांग्रेस को दिये गये प्रतिवेदन में नेहरू ने लिखा, "भविष्य की सबसे गम्भीर समस्या अमरीकी साम्राज्यवाद होने जा रहा है, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दिन अब समाप्त हो चुके है।[6]

भारत के कतिपय क्षेत्रों मे यह धारणा प्रचलित है कि अमरीका के राष्ट्रपति स्वर्गीय रूजवेल्ट ने भारत को स्वतंत्रता दिलाने में इंग्लैण्ड पर दबाव डालकर महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। अमरीका की इस तथाकथित भूमिका को यदाकदा गौरवान्वित भी किया गया है। किन्तु वास्तव में देखा जाये तो यह धारणा सिर्फ भ्रम पर आधारित है। भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में अमरीकी प्रशासन ने कोई ऐसा रचनात्मक योगदान नहीं दिया जिसे भारतीय इतिहास में गौरवमय स्थान दिया जा सके। स्वर्गीय राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने भारत को बहुत सीमित औपनिवेशिक स्वराज देने की बात कही थी। सीमित दायरे में इसलिए कि अमरीकी नेताओं का मन्तव्य इने–गिने भारतीयों को प्रशासन का भागीदार बनाकर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अधिक वफादार बनाने से था इसके अतिरिक्त उन्हे कोई सरोकार नहीं था। रूजवेल्ट ने यह भी कहा था कि "भगवान के लिए मुझे इस विवाद में मत धकेलों। यह मेरा काम नहीं है।' लुई फिशर का तो यहाँ तक कहना था कि "स्वर्गीय राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने चर्चिल को जो पत्र लिखा था वह कभी प्रेषित ही नहीं किया गया।" इससे पूर्व भी अमेरिकी प्रशासन ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति सहानुभूति दिखाई हो, इसका उल्लेख नहीं मिलता। अपितु इसके विपरीत, उनका यह दृष्टिकोण था कि इंग्लैण्ड के लोग इस पिछड़े हुए भू–भाग को सभ्य बनाने में जुटे हुए हैं। गैर सरकारी क्षेत्र में कतिपय बुद्धिजीवियों ने भारत की स्वतंत्रता की समस्या पर अवश्य दिलचस्पी दिखायी थी, लेकिन वहाँ के प्रशासन ने इस भू–भाग की राजनीतिक उथल–पुथल के प्रति सदा अनभिज्ञ रहना ही उचित समझा। सन् 1942 में "भारत छोड़ो आन्दोलन" (भारतीय क्रान्ति) को कुचलने के लिए ब्रिटिश सरकार ने अमरीकी फौजों का उपयोग किया, तो अमरीकी सरकार ने इसका विरोध नहीं किया। इससे भारतीय नेताओं को बड़ी निराशा हुयी। सन् 1945 में सन फ्रांसिस्कों सम्मेलन में जहाँ सोवियत विदेश मंत्री ने स्पष्ट रूप से भारत को स्वतंत्रता दिये जाने का समर्थन किया वहाँ अमरीकन प्रतिनिधि ने कुछ भी नहीं कहा।[7]

भारत में सन् 1943 के महाकाल की घटना भी अमरीकी बेरूखी का ज्वलन्त उदाहरण थी। यह महाकाल भारतीय इतिहास की एक प्रलयकारी घटना थी जिससे लगभग 30 लाख लोगों को खाद्यान्न के अभाव में अपने प्राण गवॉने पड़े। लेकिन संकट की इन घड़ियों में अमरीकी प्रशासन ने भारत को किसी भी तरह की सहायता देना उचित नहीं समझा। अमरीकी प्रशासन के इस बेरुखीपूर्ण रवैये के पीछे कारण स्पष्ट था। वह अपने मित्र इंग्लैण्ड को अप्रसन्न करना अथवा पशोपेश में डालना नहीं चाहता था। सन् 1946 में भारत को लगभग ऐसी ही स्थिति का पुनः सामना करना पड़ा। संकट की इन घड़ियों मे भी ट्रूमैन प्रशासन का रवैया सहयोग का न होकर उपेक्षापूर्ण था। भारतीय खाद्यान्न प्रतिनिधि मण्डल के अध्यक्ष रामास्वामी के बार–बार अनुनय–विनय के उपरान्त भी अमरीका की ओर से सहायता उपलब्ध नहीं हुई। सन् 1943–44 की दर्दनाक स्थिति का उल्लेख करते हुए मुदालियर का कहना था कि "जहाँ भारत में भूख से 30 लाख लोग मरें वहाँ इटली, जर्मनी, पोलैण्ड के युद्धबन्दियों को किसी तरह का अभाव नहीं रहा।' चौथे दशक के प्रारम्भ में अमरीकी नीति के परिणामस्वरूप भारत में अमेरिका के प्रति बहुत ही विकृत तस्वीर बनी जो विभिन्न रूपों में आज भी विद्यमान है। न्यूयार्क टाइम्स के संवाददाता ने अगस्त 1944 में अपने प्रतिवेदन में लिखा था कि "भारत के लोग अमरीकियों को धन के लोभी,

अधार्मिक, अनैतिक तथा संसार को नेतृत्व देने मे अयोग्य मानते है।[8]

वर्ष 1946 में ईरान में उत्पन्न संकट के दौरान सोवियत रूस द्वारा ईरान के प्रति कठोर नीति अपनाने पर अमेरिका ने पश्चिमी एशिया के राष्ट्रों के प्रति अपनी नीति एवं निर्णयों को सुरक्षित रखते हुए पश्चिमी राष्ट्रों के हितो को सर्वोपरि रखा। अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रमैन के सिद्धान्त के अनुसार "संयुक्त राष्ट्र अमेरिका सशस्त्र अल्प–संख्यकों या बाहरी शक्तियों (रूस) के द्वारा लोगों पर किये गये अत्याचार का विरोध करना एवं वहाँ के लोगों द्वारा उनकी स्वतंत्रता की लड़ाई का समर्थन करना नीति परक था।" सन् 1946 में आन्तरिम सरकार के गठन के तुरन्त पश्चात् भारत के प्रधानमंत्री नेहरू ने अपने रेडियो अभिभाषण में अमरीका के लोगों को बधाई संदेश देते हुए यह आशा व्यक्त की थी कि अमरीका अन्तर्राष्ट्रीय जगत में, जिसे नियति ने प्रमुख स्थान दिया है, अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। इतना ही नही नेहरू में भारत की संविधान निर्मात्री सभा में अमरीकी लोकतंत्र और शासन व्यवस्था की भूरि–भूरि प्रशंसा की थी। भारत के साथ सहयोग और मैत्रीभाव की इच्छा अमरीकी क्षेत्र में विद्यमान थी। साम्यवादी चीन के उद्भव के पश्चात भारत जैसे महादेश को मित्र बनाना अमरीका के लिए भी महत्वपूर्ण था। सन् 1950 में न्यूयार्क टाइम्स ने एशिया में साम्यवादी ज्वारभाटे को प्रतिबंधित करने में भारत को एक मात्र नियंत्रक शक्ति के रूप में देखा था। पत्र में लिखा था कि "एशिया के विद्यमान संघर्ष में नेहरू का समर्थन कई सैनिक डिविजनों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।"[9]

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् उपनिवेशीय उत्तरकाल के अभ्यूदय से अमेरिका की अनुचित आप्रवासी नीति को बदलने के लिए दबाव पड़ने लगा। इसी समय संयुक्त राष्ट्र को अधिकतर पेशेवर लोगों की आवश्यकता, जैसे डाक्टर, इन्जीनियर, ठेकेदार आदि पड़ने लगी। जिसकी वजह से अमेरिका में भारतीय विदेशियों की अप्रवासी समस्या का निदान होने लगा। इन परिस्थितियों में सिक्ख व्यापारी जे0जे0 सिंह के नेतृत्व में भारतीयों की इस मांग को अमेरिकी कॉग्रेस के सदस्य इमैनुअल सेलर एवं क्लेयर बूथ लूस के प्रयासों से 2 जुलाई 1946, को अमेरिकी कॉग्रेस ने अधिनियम के रूप में पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत भारतीयों को देशीकरण का अधिकार एवं प्रतिवर्ष 100 भारतीयों का संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (नानकोटा अप्रवासी के अतिरिक्त जैसे पति–पत्नी एंव अवस्यक बच्चे) में प्रवेश प्रारम्भ हो गया। सन् 1948 से 1965 के दौरान 7000 भारतीयों ने संयुक्त राष्ट्र में आप्रवास किया। लगभग 1780 भारतीयों ने पिछले दो दशक से जो अमेरिका में प्रवास कर रहे थे, अमरीकी नागरिकता ग्रहण की।

सन् 1965 में राष्ट्रपति लिन्डन जॉनसन के शासनकाल में आप्रवासी नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इसी वर्ष जो संयुक्त राष्ट्र में 100 भारतीयों का प्रत्येक वर्ष प्रवेश कोटा था, उसको अमेरिकी कांग्रेस ने संशोधित करके आप्रवासी एवं देशीकरण अधिनियम बनाया। इस नये कानून के बनने से गैर यहूदी एवं जाति के आधार पर बहिष्करण की नीति समाप्त हो गयी। प्रत्येक राष्ट्र उसके आकार, जाति, धर्म एवं राजनीतिक आदर्श पर ध्यान न देते हुए, प्रतिवर्ष 20000 आप्रवासियों की अनुमति प्राप्त हुई जो कि सभी राष्ट्रों के आप्रावासियों की संख्या 170000 से अधिक नहीं होनी चाहिए। इस नीति के अन्तर्गत पहली बार इटली, पोलैन्ड, भारत एवं चीन को जर्मनी एवं इग्लैण्ड की तरह स्थान मिला। इस नियम में सुधार का परिणाम था कि भारतीय पेशेवर जैसे डाक्टर, इन्जीनियर, फार्मेसिस्ट, वास्तुकार एवं अब कम्प्यूटर पेशेवर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रवसन करने लगे।

सन् 1965 से एशियाई एवं प्रशान्तीय आप्रवासियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ने लगी। सन् 1960 में सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में लगभग 5000 हजार भारतीय थे जो कि 1970 में यह संख्या 1,50,000 पहुंच गयी। सन् 1980 की जनगणना के अनुसार भारतीय अमरीकी समुदाय की संख्या लगभग 3,87,223 हो गयी। सन 1990 की अमरीकी जनगणना के अनुसार भारतीय अमरीकी संख्या 8,15,447 हो गयी। 1980 एवं 1990 की जनगणना के बीच 8.5 प्रतिशत की दर से इस संख्या में वार्षिक बढोत्तरी हुई है। जनसंख्या रिफरेन्श ब्यूरो के आकलन के अनुसार 1980–90 के मध्य भारतीय अमरीकी जनसंख्या लगभग 103 प्रतिशत बढ़ी एवं 1990–97 के मध्य लगभग 55 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। सन् 1997 में भारतीय अमरीकी जनसंख्या लगभग 1215000 हो गयी जो कि संयुक्त राष्ट्र में चीनी एवं फिलीपीनी अमरीकियों को छोड़कर भारतीयों की संख्या एशियाई अमरीकी गैर–यहूदी समूह में सबसे अधिक थी। संयुक्त राज्य अमरीका में भारतीय–अमरीकी समुदाय ने महत्वपूर्ण परिवर्तन एवं अच्छी शरूआत का अनुभव किया। अमरीका में अप्रवासी भारतीयों की संख्या कैलीफोर्निया, न्यूयार्क, न्यू–जर्सी, टेक्साज, फ्लोरिडा, इल्लिनयोस राज्यों में अधिक है।[10]

उपयुक्त पृष्ठभूमि में भारत–अमरीकी सम्बन्धो का ढाँचा खड़ा करने का प्रयत्न किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात भारत अमरीकी सम्बन्धों को सामान्य एवं मधुर बनाने की इच्छा दोनों ही राष्ट्रों के नीति निर्माताओं के मन में होने के बावजूद अनेक समस्याओं पर मतभेद उभरकर सामने आने लगा। एशिया की राजनीति में अमरीका की घुसपैठ और कतिपय देशों के साथ सैनिक प्रतिबद्धताओं के परिणामस्वरूप जो तस्वीर उजागर हुई वह भी बहुत उजली नहीं कही जा सकती। इस "तीसरी दुनिया" के भू– भाग मे अमरीकी नीति अधिकांशतः गैर–प्रजातन्त्रवादी, फासिस्ट और सैनिक तानाशाही की समर्थक रही है। पाकिस्तान, दक्षिण कोरिया, दक्षिण वियतनाम आदि देशों के साथ उसके गठबन्धन ने प्रजातन्त्रीय दुनिया के लोगो के मन में उसकी नीति के प्रति सन्देह ही उत्पन्न किया। विशेषकर भारत में अमरीका के प्रति रोष एवं विरोध प्रकट हुआ। सैनिक–सन्धियों एवं अस्त्र–शस्त्रों की सहायता के कारण सामान्यजन में यह अवधारणा बनी कि अमरीका जनतन्त्रीय मूल्यों के प्रति इतना कृतसंकल्प नहीं है जितना वह अपने राष्ट्रीय और विश्वव्यापी हितों के प्रति है। निष्कर्षतः उसकी साम्राज्यवादी आकांक्षा और छवि ही अधिक प्रस्फुटित हुयी है। आर्थिक एंव सैनिक क्षेत्रों में अपार सहायता को भी तृतीय विश्व में अमरीकी हितों के परिपोषण का साधन ही माना गया है।

## सन्दर्भ सूची


1. अमिताई "समुदायों का समुदाय" इत्जियोनी वाभिंगटन क्वाटर्ली वाल्यूम 19 न0 3 पृष्ठ सं0. 127–138
2. नलिनी कान्त "भारतीय–अमरीकी एक उभरती शक्ति" झा पृष्ठ 55–56
3. गोयल मदन लाल "इंडिया टू अमेरिका : एन एशियन जर्नी, पृ. 30
4. नलिनी कान्त "भारतीय–अमरीकी– एक उभरती शक्ति' का पृष्ठ 58.
5. नलिनी कान्त – "इन्डियन अमेरिकन–ए ग्रोविंग फार्स' पृष्ठ 58
6. इंडियन एजेन्सी, वाशिंगटन डी0सी0 "इंडियन अमेरिकन कमुनिटीः ए स्टोरी आफ अचीबमेन्ट्स" 1999
7. टी0वी0 कुहलीकृष्णन, "अनफ्रेन्डली फ्रेन्ड्सः इंडिया एण्ड अमरीका" पृष्ठ– 113
8. न्यूयार्क टाइम्स, 1944
9. न्यूयार्क टाइम्स, 1950
10. टी0वी0 कुहलीकृष्णन, "अनफ्रेन्डली फ्रेन्ड्सः इंडिया एण्ड अमरीका" पृष्ठ– 115